इकाई 2 स्वतंत्र राज्यों का आविर्भाव

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 मैसूर का उत्थान

2.3 मैसूर में युद्ध और सैन्यीकरण की भूमिका

2.3.1 स्थानीय सरदार

2.3.2 अठारहवीं शताब्दी के प्रयास

2.4 मैसूर का प्रशासन

2.5 मैसूर के वित्तीय संसाधन

2.5.1 भूमि से प्राप्त राजस्व

2.5.2 व्यापार से प्राप्त राजस्व

2.6 हैदराबाद एक स्वतंत्र राज्य के रूप में

2.6.1 युद्ध और सेना

2.7 भू-राजस्व प्रणाली

2.8. संरक्षक और उनके आश्रित

2.8.1 वकील

2.9 स्थानीय सरदार

2.10 वित्तीय और सैन्य समूह

2.11 प्रशासनिक प्रणाली

2.12 सिख धर्म : धार्मिकता से राजनैतिक पहचान तक

2.13 सिख राज्य का उदय

2.14 सिख राजनीतिक व्यवस्था का चरित्र

2.15 सारांश

2.16 शब्दावली

2.17 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित को समझ पाएंगेः

- मुगल सत्ता के पतन के बाद क्षेत्रीय शक्तियों का उदय,
- आप उस प्रक्रिया को समझने में सक्षम होंगे जिसमें मैसूर और हैदराबाद का अठारहवीं सदी में राजनीतिक गठन हुआ,
- यह दिखाना कि यह प्रक्रिया कैसे दो क्षेत्रों में भिन्न थी और उन कारणों को समझना कि दोनों प्रक्रिया क्यों अलग-अलग थी,
- सिख शासन की स्थापना से पहले पंजाब में राजनीतिक व्यवस्था का विकास,
- सिख धार्मिक व्यवस्था का एक राजनीतिक शक्ति के रूप में परिवर्तन, और
- वह प्रक्रिया जिसके माध्यम से सिख राज्य का उदय हुआ।

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 19 24-03-2021 11:47:17

2.1 प्रस्तावना

मुगलों के पतन के बाद क्षेत्रीय शक्तियों का उदय संभवतः सबसे महत्वपूर्ण विकास था। इस प्रक्रिया को तीन प्रकार के राज्यों के समूह के रूप में समझा जा सकता है। हैदराबाद, अवध और बंगाल, उत्तराधिकारी राज्य मुगल साम्राज्य के तत्कालीन प्रांत थे, जो टूट कर स्वतंत्र राज्य बने। 'नए राज्य', मराठा, सिख, जाट और अफगानों द्वारा बनाए गए। इनमें से कुछ राज्यों के निर्माण में शाही माँगों के खिलाफ लोकप्रिय किसान आंदोलनों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। तीसरी श्रेणी मैसूर, राजपूत और केरल के स्वतंत्र राज्यों की थी। जिन प्रांतों में मुगल के गवर्नर स्वतंत्र राज्य स्थापित करते हैं वहाँ दिल्ली से संबंध विच्छेद तीन चरणों में होता हैः व्यक्तियों के विद्रोह के बाद सामाजिक समूहों का विद्रोह, समुदायों का विद्रोह और अंत में क्षेत्रों का विद्रोह। शाही राजस्व की माँगों के खिलाफ जमींदारों के विद्रोह से विघटन हुआ। गवर्नरों (सूबेदारों) को केन्द्र का समर्थन नहीं मिला और उन्होंने स्थानीय संभ्रांत लोगों का समर्थन हासिल करने की कोशिश की। क्षेत्रीय राज्यों का दूसरा समूह 'नए राज्यों' और 'विद्रोही राज्यों' का था जैसे मुगल के खिलाफ विद्रोह करने वालों मराठा, सिख, जाट आदि का। पहले तीन किसान विद्रोहों के रूप में लोकप्रिय आंदोलनों के रूप में शुरू हुए थे। इनमें नेतृत्व आभिजात्य वर्ग का नहीं था बल्कि नए लोगों का जो अक्सर निम्न तबकों से आए थे।

हमारा खास ध्यान मैसूर और हैदराबाद के राज्यों के उदय पर केन्द्रित होगा। हम यहाँ देखेंगे कि पहले की राजनीतिक संस्थाओं के बने रहने के बावजूद गठित होने वाले राज्यतंत्रों में कुछ बुनियादी बदलाव हुए। मैसूर और हैदराबाद में ऐसा कई तरीकों से हुआ। जब हैदराबाद में मुगल राजनीतिक संस्थाएँ कमजोर पड़ गयीं और उनका इस्तेमाल क्षेत्र की स्थिति को मजबूत करने के लिए होने लगा तो दूसरी तरफ मैसूर में वोडयार वंश को उखाड़ फेंका गया और उसकी जगह एक मजबूत और सुदृढ़ प्रशासन का गठन हुआ। शुरुआत में इन दोनों की प्रक्रियाओं ने अठारहवीं शताब्दी के मध्य दशकों में स्वायत्तता की स्थिति को जन्म दिया।

2.2 मैसूर का उत्थान

मैसूर राज्य हैदराबाद के दक्षिण में था। अठारहवीं शताब्दी में, वोडयार से लेकर टीपू सुल्तान तक, मैसूर के सभी शासकों को एक ओर तो मराठों के विस्तारवाद की चुनौती का सामना करना पड़ा तो दूसरी ओर हैदराबाद और कर्नाटक के विस्तारवाद की चुनौती से निपटना पड़ा और अंग्रेजों ने इस स्थिति का फायदा उठाया। अठारहवीं शताब्दी की जो जानी-मानी हस्तियाँ थी, उनमें एक टीपू सुल्तान था, जो अंग्रेजों की बढ़ती ताकत से टक्कर लेने वाला एक लोक नायक बन गया और अंग्रेज उसे सत्ता हथियाने की राह का कांटा मानते थे। मैसूर को विजय नगर साम्राज्य की वायसरायी से बदल कर वोडयार वंश ने उसे एक स्वायत्तशासी राज्य बना दिया। अब मैसूर को दक्षिण भारत में एक बड़ी ताकत के रूप में स्थापित करने का उत्तरदायित्व हैदरअली और उसके बेटे टीपू सुल्तान पर था। हैदर मामूली खानदान से था और उसके समय के उसके विरोधी अंग्रेज उसे अक्सर अनाधिकार ग्राही (या, हड़प लेने वाला) कहते थे – इस बात का असर बाद के इतिहासकारों में भी देखने को मिलता है। लेकिन वह उसी मायने में अनाधिकार ग्राही था जिस मायने में मैसूर का वह प्रधान मंत्री या दलवई अनाधिकार ग्राही था, जिसकी जगह हैदर आया था। दलवई ने नामधारी वोडयार राजा का वजूद ही शून्य कर दिया था और अपने पहले के दलवई, नंजराज की तरह हैदर ने भी राज्य की सेवा करने वाले एक कर्मचारी की हैसियत से शुरुआत की थी। उसने सेना को मजबूत करने, बेलगाम स्थानीय सरदारों या पोलीगरों को काबू में करने और बेदनोव, सुंडा, सेवा, कनारा और गुटी को अधीन करने में अपनी सैन्य प्रतिभा दिखायी। उसकी जीत का सबसे महान क्षण वह था, जब उसने अंग्रेजी सेनाओं को मद्रास के अंदर पाँच मील तक खदेड़ कर 1769 में उन्हें संधि के लिए मजबूर कर दिया। इस इकाई में हम यह अध्ययन करेंगे कि मैसूर एक बड़ी क्षेत्रीय ताकत के रूप में कैसे मजबूत और स्थापित हुआ।

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 20 24-03-2021 11:47:17

2.3 मैसूर में युद्ध और सैन्यीकरण की भूमिका

युद्ध और उसके साथ सैन्यीकरण की अहमियत मैसूर के इतिहास में और भी पहले से दिखायी देती है। इतिहासकार स्टाइन के अनुसार, सैन्यीकरण की परंपरा ऐतिहासिक विजयनगर साम्राज्य में सोलहवीं शताब्दी से देखी जा सकती है। दक्षिण भारत में सबसे पहले विजयनगर ने ही स्थानीय राजाओं और दूसरी बाहरी ताकतों पर अपना कब्जा कायम करने की गरज से आग्नेयास्त्रों (बंदूक, पिस्तौल जैसे हथियारों) का इस्तेमाल किया था।

2.3.1 स्थानीय सरदार

यह समझने के लिए कि मैसूर में बहुत पहले सैन्यीकरण क्यों जरूरी हो गया था, स्थानीय सरदारों की भूमिका को समझना अहमियत रखता है। स्थानीय सरदार, खास तौर पर, पोलीगर, जंगलों के शिकारी संग्रहकर्ता समूहों के वंशज थे, जिन्होंने सैन्य कौशल हासिल कर लिया था और विजयनगर साम्राज्य की सैनिक सेवा में स्थानीय राजनीतिक नेतृत्व की सीख भी ली थी। अठारहवीं शताब्दी आते-आते उनमें से अधिकांश ने दो मुख्य माध्यमों से ताकत हासिल कर ली थी – (क) राजस्व का कब्जा और अपनी भूमियों पर खेती से मिलने वाला अंशदान, और (ख) उनके अपने संप्रदाय के मंदिरों के पुरोहितों का समर्थन। इसके अलावा इस तथ्य ने भी इस दिशा में काम किया कि मंदिर व्यापार के केंद्र भी थे और उन्होंने स्थानीय सरदारों को ताकत हथियाने में मदद की, जिससे वे मैसूर के किसी भी केन्द्रीयकृत राज्य के विकास को प्रभावित कर सकें। इसका यह भी अर्थ हुआ कि मैसूर और पोलीगरों के बीच ताकत और सैनिक बल का टकराव मैसूर में किसी राजतंत्र को स्थापित करने में निर्णायक कारक होता।

2.3.2 अठारहवीं शताब्दी के प्रयास

इस टकराव की शुरुआत अठारहवीं शताब्दी में चिक्कदेव राजा वोडयार (1672-1704) ने की। उसके अधीन मैसूर अभूतपूर्व सैन्यीकरण की ओर बढ़ा। इस बढ़ी सैनिक क्षमता को बनाये रखने के लिए उसने राज्य के अधिकारियों के द्वारा इकट्ठे किए जाने वाले आम राजस्व को बढ़ा दिया और उसके सैनिकों के पास जो भूमि थी उसे राजस्व करों से मुक्त कर दिया।

हैदरअली जो धीरे-धीरे मैसूर प्रशासन की सीढ़ियाँ चढ़ता ऊपर तक जा पहुँचा था, उसने अपने आपको ठीक इसी तरीके से मजबूत किया। उसने भूमि के बड़े हिस्सों को महत्वाकांक्षी योद्धाओं के हाथों नीलाम कर दिया, जिन्होंने राजस्व किसानों की हैसियत से स्थानीय सरदारों पर राजस्व लाद दिया। हैदरअली ने इन सरदारों का स्वाधीनता का कोई दावा नहीं माना और अगर किसी ने विरोध करने की कोशिश की तो उसे उसकी भूमि से ही खदेड़ दिया। इन सरदारों की गतिविधियों के क्षेत्र को सीमित करके हैदर ने फिर उनके स्थानीय प्रभुत्व को तोड़ा। उसका बेटा, टीपू सुल्तान पोलीगारों को अधीन बनाने में और भी आगे बढ़ा। उन्हें निकाल देने के बाद उसने उनकी भूमि को या तो निजी क्षेत्र के व्यक्तियों को या फिर सरकारी अधिकारियों को किराये पर उठा दिया। इसके अलावा, टीपू सुल्तान ने अपने सैनिकों को युद्ध की लूट में हिस्सा देने की जगह उन्हें नियमित तनख्वाह देनी शुरू कर दी, जिससे यह तय हो गया कि सेना में स्थानीय सरदारों के साथ सांठ-गांठ वाला कोई स्वार्थी तत्व सर न उठा सके।

कुछ मायने में हैदर और टीपू ने सेना के संगठन की कुछ कमजोरियों को भी खत्म करने की कोशिश की। उन्होंने संगठन में यूरोपीय ढंग से अनुशासन को और मजबूत बनाने की कोशिश की।

इसके लिए उन्होंने फ्रांसीसी सैनिकों की भर्ती की और उनसे सैनिकों को विशेष प्रशिक्षण देने का काम लिया। हमारे पास हैदर के अधीन फ्रांसीसी सेनापति द ला तूर की सेवा का ब्योरा उपलब्ध है, जिससे पता चलता है कि 1761 तक मैसूर सेना में फ्रांसीसी लोगों की गिनती काफी बढ़ गयी थी। इससे पैदल सेना और तोपचियों के प्रशिक्षण में मदद मिली होगी। दूसरी बात यह है कि, इससे आधुनिक यूरोपीय आग्नेयास्त्रों और तोपों के उपयोग

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 21 24-03-2021 11:47:17

के लिए एक माहौल भी तैयार हुआ। उपर्युक्त विचार इतिहासकार संजय सुब्रहमण्यम का है, जिन्होंने वोडयार मैसूर के युद्ध का विशेष अध्ययन किया है।

2.4 मैसूर का प्रशासन

हैदर और बाद में टीपू की एक और उपलब्धि थी प्रशासन के ढाँचे को मजबूती प्रदान करना। असल में हैदर और टीपू के वोडयारों के पुराने प्रशासन के साथ छेड़छाड़ नहीं की। उन्होंने सेना और राजस्व से लेकर सूचना तक प्रशासन के 18 विभागों को बनाए रखा। अपनी क्षमता दिखाने वाले खांडे राव, वेंकटप्पा या मीर सादिक जैसे सर्वोच्च अधिकारियों को राजनीतिक खींचतान के बावजूद साथ रखा गया। असल में रद्दोबदल उसी समय की गयी जब ऐसे बड़े अधिकारी पैसों की गड़बड़ी में पकड़े गए। ब्रिटिश प्रशासक टामस मुनरो का यह मत था कि हिंदू या मुसलमान देशी शासक के अधीन व्यक्तिगत दौलत और महत्वाकांक्षा पाने की जो गुंजाइश थी उसे देखते हुए ही समाज के कुलीन वर्गों ने कंपनी की सेवा के ''विनम्र मामूलीपन'' की जगह, देशी शासकों के साथ जुड़ना पसंद किया।

2.5 मैसूर के वित्तीय संसाधन

बहरहाल, हैदर और टीपू के अधीन मैसूर प्रशासन की खास बात थी राज्य चलाने के लिए अपने वित्तीय संसाधनों में बढ़ोत्तरी करके अपने सैन्य राजनीतिक अधिकार का आधार तैयार करना। इसके लिए, अठारहवीं शताब्दी के मैसूर के वित्त और उत्पादन के दो संचालकों– व्यापारी और किसान दोनों को संभालना था।

2.5.1 भूमि से प्राप्त राजस्व

भूमि को अलग-अलग वर्गों में बाँटा हुआ था और हर वर्ग की भूमि के मूल्यांकन का तरीका भी अलग था। इजारा भूमि को तय किरायों पर किसानों को पट्टे पर दिया जाता था। हिस्सा भूमि पर किराया उत्पादन में हिस्से के तौर पर देना होता था। इसके अलावा सिंचित भूमि का किराया उत्पादन में हिस्से के तौर पर देना होता था और सूखी भूमि का किराया पैसों में चुकाना होता था।

भूमि को सर्वेक्षण और नियंत्रण प्रणाली के तहत रखा जाता था और खेत जोतने वालों को काफी राहत और सुरक्षा देकर उनका हौसला बढ़ाया जाता था। राज्य नियंत्रण की एक मजबूत प्रणाली बनायी गयी थी, जिसमें *अमलदार* तो राजस्व प्रशासन को नियंत्रित करते थे और *आसफदार* किराए संबंधी झगड़ों के कानूनी बिंदुओं की देखभाल करते थे। बिचौलियों को खत्म करके राज्य के लिए अधिक से अधिक राजस्व बनाने के लिए राज्य के हितों और किसानों के हितों के बीच एक सीधा सूत्र बनाया गया। टीपू ने राजस्व किसानों से किसानों की रक्षा करने के लिए खास सरकारी अधिकारियों को खेती के अधिकार न देने जैसे कई उपाय किए।

टीपू की भूमि राजस्व नीति में खेती को विकास की सुविधाएँ देने के लिए व्यक्तियों को खेती करने के लिए पूरी स्वतंत्र व्यक्तिगत पहल देने का प्रावधान था। ऐसे व्यक्तियों को सिंचाई तथा अन्य संबंधित कार्यों के लिए जमीन मुफ्त में दी गई। इस तरह लोगों का एक ऐसा वर्ग तैयार किया गया जो खेती के विकास को स्वतंत्र रूप से सहारा दे सकें।

परन्तु इन उपायों से अलग पड़ी भूमि को जोतने और एक खास परिवार को हमेशा के लिए जागीर दे देने वाली, जागीर प्रणाली के कारण सफलता नहीं मिली। दूसरी ओर खेती के उत्पादन में पूरे गाँव की साझेदारी होने की प्रथा थी। जैसा कि इतिहासकार निखिलेश गुहा बताते हैं, इस प्रथा के कारण उत्पादन का बड़ा हिस्सा वर्चस्व रखने वाली या ऊँची जातियों को चला जाता था, जो अधिकतर कर्मकांड करते थे। इस तरह, ऐसा कोई तरीका नहीं था जिससे कि अतिरिक्त उत्पादन का इस्तेमाल खेतिहर समुदाय में विकास का काम शुरू करने के लिए किया जा सके। परिणामस्वरूप खेतिहर के पास इतने संसाधन नहीं बच पाते थे कि खेती का विकास हो सके।

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 22 24-03-2021 11:47:17

सबसे अधिक, राज्य युद्ध को प्राथमिकता देता था। सुलतानों का खास ध्यान मराठों, हैदराबाद कर्नाटक और अंग्रेजों पर था। इसके कारण सैन्य खर्चा बेतहाशा बढ़ गया और उसके परिणामस्वरूप राजस्व की माँग बढ़ गयी। उदाहरण के लिए, टीपू ने अपनी हार के समय भूमि राजस्व में 30 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की थी। इस तरह खेती के किसी स्थायी विकास की संभावना नहीं थी और खेतिहर को और अधिक पैसा देने को मजबूर करना इस स्थिति का ऐसा परिणाम था जिसे टाला नहीं जा सकता था।

2.5.2 व्यापार से प्राप्त राजस्व

व्यापारी लोग लगभग पिछली दो शताब्दियों से मैसूर की अर्थव्यवस्था में एक अहम् भूमिका निभा रहे थे। इनमें से अहम् व्यापारियों ने अंदरूनी, बाहरी व्यापार और राजस्व खेती को एक दूसरे से जोड़ व्यापार और भूमि के इन विविध निवेशों का एक विभाग हथियाया हुआ था। राजनीतिक कार्यवाही के स्तर पर वे अक्सर सत्ताधारी शासकों के बीच अपने हितों की रक्षा करवाने के लिए मौजूद प्रथा और पारंपरिक संबंधों का इस्तेमाल करते थे। भूमि में उनका दखल काफी महत्वपूर्ण था। जैसा कि संजय सुब्रमण्यम बताते हैं, उनमें से कुछ के बड़े राजस्व किसान होने के बावजूद उनके अधीन खेती वाले इलाके में संपन्नता ही आयी, गिरावट नहीं। इससे पता चलता है कि वे भूमि को कितना महत्व देते थे और व्यापार के लाभों का भूमि में थोड़ा-थोड़ा करके आना कितना अहम् था। इस तरह संपन्न व्यापारियों की मैसूर की अर्थव्यवस्था में अहम भूमिका थी।

टीपू ने इन व्यापारियों और उनके व्यापार की अहमियत को समझा। उसने ''असुफों'' को नियुक्त किया कि वे अधिकारियों को प्रशिक्षित करें, जिससे कि वे व्यापार को काबू में रखने के लिए टीपू के द्वारा स्थापित व्यापार केंद्रों को चला सकें।

राज्य के अधिकारियों के जमा किए हुए राजस्व से इन व्यापार केन्द्रों के लिए व्यापार पूँजी उपलब्ध करानी होती थी। ऐसी व्यवस्था की गयी थी कि व्यक्ति निजी हैसियत में राज्य के व्यापार में पूँजी लगाने के लिए पैसा जमा करें जिस पर उन्हें 35 प्रतिशत का लाभ दिया जाता था। निजी व्यापारियों को यह छूट थी कि वे यहाँ आवश्यक वस्तुओं की बिक्री में हिस्सा लें, इसे राज्य के लिए फायदेमंद समझा जाता था। इन केंद्रों के हिसाब-किताब की नियमित जाँच होती थी। इसके अलावा, मुद्रा के नियमन का कठोरता से पालन होता था।

बहरहाल, ऐसा लगता है कि निजी व्यापारियों की गतिविधियों के विस्तार, या अंग्रेजों के संदर्भ में समुद्री व्यापार पर वर्चस्व को एक संभावी खतरे के रूप में देखा जाता था, ऐसा शायद देसी व्यापारियों और अंग्रेजों के बीच गठबंधन के रूप में था। 1785 में उसने अपने बंदरगाहों से काली मिर्च, चंदन और इलायची के निर्यात पर पांबदी लगा दी। 1788 में उसने अंग्रेजों के साथ व्यापार करने की साफ मनाही कर दी।

संक्षेप में, अठारहवीं शताब्दी में मैसूर एक ऐसा राज्यतंत्र था जो हैदर और टीपू की सैनिक ताकत के द्वारा मजबूत तो हुआ लेकिन उन पर इस बात का लगातार दबाव रहा कि वे सैन्य शक्ति के कारण काबू में आयी ताकतों का कोई स्थायी हल निकालने में समर्थ नहीं थे। इसके परिणामस्वरूप हमने देखा कि राज्यतंत्र के भीतर के व्यक्तियों में खुद राज्यतंत्र की कीमत पर अपना निजी फायदा करने की कैसी संभावनाएँ बनीं।

बोध प्रश्न-1

सही उत्तर पर निशान लगाएँ।

1) टीपू के अधीन स्थानीय सरदार–

   क) खुलेआम अपने अधिकारों का इस्तेमाल कर रहे थे।

   ख) पूरी तरह से काबू में रखे जाते थे।

   ग) कभी रहे ही नहीं।

   घ) (क) और (ग) दोनों।

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 23 24-03-2021 11:47:17

2) युद्ध–
   - क) मैसूर राज्यतंत्र की कार्यसूची से पूरी तरह से गायब था।
   - ख) मैसूर राज्यतंत्र स्थापित करने की तरकीबों का एक अहम् हिस्सा था।
   - ग) अठारहवीं शताब्दी में मैसूर राज्य और स्थानीय सरदारों के बीच शक्ति संतुलन को निर्धारित करता था।
   - घ) (ख) और (ग) दोनों।

3) टीपू के अधीन भू-राजस्व–
   - क) मुख्य तौर पर राजस्व किसानों के माध्यम से इकट्ठा किया जाता था।
   - ख) मुख्य तौर पर टीपू द्वारा नियुक्त सरकारी अधिकारी इकट्ठा करते थे।
   - ग) बिचौलिए इकट्ठा करते थे।
   - घ) सुल्तान के हाथों में नहीं जाने दिया जाता था।

4) मैसूर में व्यापारियों के लाभ–
   - क) कृषि विकास में लगाए जाते थे।
   - ख) कृषि में कभी नहीं आते थे।
   - ग) मुख्य तौर पर उद्योग में लगा दिए जाते थे।
   - घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं।

2.6 हैदराबाद एक स्वतंत्र राज्य के रूप में

ऐसा लगता है कि हैदराबाद के राज्यतंत्र ने मैसूर के राज्यतंत्र से अलग किस्म के ढाँचे को अपनाया। यहाँ शुरू के दिनों में मुगल प्रभाव कहीं अधिक मुखर था। आमतौर पर मुगल साम्राज्य के दिनों में दक्कन के सूबेदार को हैदराबाद में नियुक्त किया जाता था। यहाँ पर मुगल प्रशासन प्रणाली को लागू करने का प्रयास किया गया। लगातार मुगल मराठा टकराव और अंदरूनी तनाव के बावजूद इस प्रणाली ने दक्कन में मुगल साम्राज्य की व्यवस्था को मुखर किया। परंतु मुगल साम्राज्य के पतन के परिणामस्वरूप यह प्रणाली संकट में पड़ गयी थी।

निजाम आसफ जाह को मुगल सम्राट ने 1713 में पहले सूबेदार (प्रांत का प्रभारी) बनाया। लेकिन 1724 में अपने प्रतिद्वंद्वी मुगल नियोक्ता पर सैन्य विजय के बाद ही उसके हाथ में दक्कन की बागडोर असरदार ढंग से आ सकी। इस दौर के बाद वह दक्कन में ही बना रहा और अपने नियुक्त किए हुए प्रभारी को यहाँ छोड़कर ही वह मुगल दरबार में गया। उसके बाद उसने हैदराबाद से मुगल अधिकारियों को हटा दिया और उनकी जगह अपने आदमी बिठा दिए। उसने संधि करने, युद्ध करने और मंसब और खिताब देने के अधिकार भी अपने हाथ में ले लिए। अब धीरे-धीरे मुगल अधिकार कुतबा पढ़ने आदि तक ही सीमित रह गया। निजाम अली खाँ (1762-1803) के समय तक आते-आते कर्नाटक मराठे और मैसूर सभी ने अपने जमीन के दावों को सुलझा लिया था और हैदराबाद में एक किस्म का स्थिर राजनीतिक ढाँचा उभर आया था।

2.6.1 युद्ध और सेना

अन्य जगहों की तरह ही, हैदराबाद में उभरने वाले राज्यतंत्र का एक अहम् अंग सेना ही थी। निजामुल-मुल्क ने मौजूदा जागीरदारियों को बने रहने देने की नीति ही अपनायी। सेनापति और उनके सैनिक अपने निजी नियोक्ताओं, खासतौर पर सामंतों के जरिए राजनीतिक व्यवस्था से बंधे थे। यहाँ की स्थिति मैसूर से इस मायने में अलग थी कि यहाँ (हैदराबाद में) स्थानीय सरदारों के अधिकारों को ज्यों का त्यों बना रहने दिया गया। मुगल सेना की तरह, हैदराबाद की सेना का रख-रखाव भी निजाम के खजाने में सामंतों द्वारा लिए गए नकद भत्तों से किया जाता था।

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 24 24-03-2021 11:47:18

सेना की मराठा, कर्नाटक नवाब, मैसूर या अंग्रेजों को अंकुश में रखने में महत्वपूर्ण भूमिका थी। हालांकि ऐसा मैसूर में नहीं था, फिर भी हैदराबाद में राज्य के वित्त को सीधा-सीधा युद्ध में लगाने के लिए तैयार करने के प्रयास मैसूर के मुकाबले निश्चित रूप से कमजोर दिखायी देते हैं। आइए हम वित्त के मुख्य साधन – भूमि राजस्व प्रणाली की ओर ध्यान दें और देखें कि क्या राज्य के लिए राजस्व इकट्ठा करने में सचमुच फर्क था।

2.7 भू-राजस्व प्रणाली

हैदराबाद की भू-राजस्व प्रणाली मैसूर की भू-राजस्व प्रणाली से इस मायने में फर्क थी कि टीपू और हैदर ने तो राजस्व पर एक बड़ी नौकरशाही के जरिए सीधे काबू करने की कोशिश की थी, लेकिन हैदराबाद के शासकों ने यह काम बिचौलियों को करने दिया।

इतिहासकार एम. ए. नईम ने इजारा या राजस्व खेती भूमि के वजूद की बात कही है। दूसरे, तमाम ऐसे पेशकश जमींदार थे, जिनकी भूमि का सरकारी तौर पर आकलन नहीं होता था लेकिन उन्हें अपने ही आकलन खातों के हिसाब से एक सालाना अंशदान या ''पेशकश'' देनी होती थी। तीसरे, नईम के अनुसार, जहाँ जमींदारों और देशपांडे (गाँव प्रधानों) को राज्य के आकलन के आधार पर भू-राजस्व देना होता था, वहाँ भी उनकी सहमति ली जाती थी।

राजस्व के लिए यह तो समझा जाता था कि वह उत्पादन का 50 प्रतिशत होना चाहिए, लेकिन ऐसा बहुत कम ही होता था कि इस अनुपात में राजस्व इकट्ठा हो। राज्य और भू-राजस्व दाताओं के बीच बिचौलियों का महत्व इस तथ्य से पता चलता है कि राज्य की इकट्ठा हुई रकम या ''जमाबंदी'' जमींदार की सहमति से तय हुई आकलन की रकम, या ''कामिल'' से हमेशा कम होती थी। जैसा कि नईम ने लिखा है, इन दोनों, कामिल और जमा के बीच का फर्क जमींदार का हिस्सा होता था। निजाम काल के राजस्व संबंधी दस्तावेजों से ''हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि वास्तविक राजस्व में भी गिरावट आयी''।

हैदराबाद में जागीरें या राज्य की सेवा के लिए मिलने वाली भूमि पुश्तैनी होती थी। मैसूर में तो इस पर रोक लगाने की कोशिश हुई, लेकिन हैदराबाद में इसके लिए कोई गंभीर उपाय किए गए नहीं लगते। यही नहीं, जागीरदार पुश्तैनी विरासत का फायदा उठाते हुए इतने मजबूत हो गए कि वास्तविक राजस्व में गिरावट आने के संदर्भ में भी इस बात का कोई सवाल नहीं उठता कि जागीरदारों को जो रकम सचमुच मिलनी चाहिए, उनकी जागीरों से उन्हें मिलने वाले राजस्व उससे कम हो।

हैदराबाद के भू-राजस्व प्रशासन में अमिल (प्रांतीय प्रधानों) के नीचे अधिकारी होते थे। नियमित आकलन और सर्वेक्षण के उपाय किए जाते थे। खेती करने वालों का राज्य की कर्ज और मोहलत की नीति के जरिए हौसला बढ़ाया जाता था।

मगर ये सभी संभावनाएँ बिचौलियों की ताकत और अहमियत ने खत्म कर दी। हमने ऊपर देखा कि उनकी भूमि का राजस्व के आकलन और जमा करने में निर्णायक थीं।

इसका निजामों के अधीन हैदराबाद के राज्यतंत्र के बनने पर महत्वपूर्ण असर पड़ना था लगता है कि वहाँ बिचौलिए स्वार्थों का एक ऐसा तंत्र (नेटवर्क) मौजूद था जो सर्वोच्च स्तर पर ताकत और असर के लिए चलने वाली होड़ के लिए राजनीतिक आधार बन सकता था।

2.8 संरक्षक और उनके आश्रित

इतिहासकार कैरेन लियोनार्ड हैदराबाद की राजनीतिक व्यवस्था में शिथिल ''संरक्षक-आश्रित संबंध'' की बात बताती है। वह मुख्य संरक्षक निजाम और शक्तिशाली सामंतों को बताती है। निजाम तो अपनी पकड़ बनाए रखते थे, जबकि उनके इर्द-गिर्द सामंतों का घेरा समय-समय पर बदलता रहता था। निजाम के काल में सांमतों को अपने काम में आगे बढ़ने के लिए कोई एक-सा मानदंड नहीं था, जैसा कि मुगलों के अधीन होता था। निजाम के साथ व्यक्तिगत संबंध या सैनिक कौशलों को अहमियत मिल रही थी। इसलिए हैदराबाद में

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 25 24-03-2021 11:47:18

शक्तिशाली बनने के लिए मंसबों ने (जैसा कि मुगलों की व्यवस्था में था) सामंतों के उदय को नहीं रोका। बहुत से ऐसे जमींदार या जागीरदार जो अपने पीछे छोटे बिचौलियों को लेकर चल सकते थे, थोड़े से सैनिक कौशल और कूटनीति के बल पर शक्तिशाली हो गए।

इससे पहले मुगलों के औपचारिक भू-राजस्व नियमों और व्यवस्थित प्रशासनिक स्तरीकरण के कारण शक्ति और दौलत बनाने की गुंजाइश सीमित ही रही। लेकिन अब संस्था का ढाँचा इतना कमजोर था कि शीर्ष पर राजनीतिक दावों को सीधे-सीधे हथियाया जा सकता था।

2.8.1 वकील

शक्ति और दौलत हथियाने की इस प्रक्रिया को ''वकील'' कहलाने वाले बिचौलियों का एक और तंत्र मदद पहुँचा रहा था। ये ''वकील'' निजाम और सामंतों के बीच, सामंतों और सामंतों के बीच, और निजाम और बाहरी ताकतों के बीच दलालों का काम करते थे। वकील हैदराबादी सामंतों द्वारा संचालित विशाल और पैसे वाली संस्थाओं में व्यक्तियों के लिए सुअवसरों की भी व्यवस्था करते थे।

ये वकील आमतौर पर व्यक्तियों के स्वार्थों के आधार पर काम करते थे और वहीं तक शक्तिशाली थे जहाँ तक उनके संरक्षक शक्तिशाली थे। इसी के साथ, व्यक्तिगत लाभ के लिए निष्ठा तथा संरक्षण बदल लेना आम बात थी। उस माहौल में जहाँ काम को आगे बढ़ाने के लिए कोई एक-सा मापदंड नहीं था, ये वकील शक्ति और दौलत के लिए चलने वाली होड़ में व्यक्तिगत लाभ के लिए कार्य करने वाली शक्तियों के प्रतिनिधि थे।

2.9 स्थानीय सरदार

मैसूर की स्थिति के विपरीत, निजाम के अधीन स्थानीय सरदारों ने निजाम को अंशदान देने के बाद अपनी पुश्तैनी भूमि पर कब्जा जारी रखा। उन्होंने निजामों और उसके सामंतों जैसे संरक्षकों की भूमिका तो निभायी, लेकिन उन्हें हैदराबाद की राजनीतिक व्यवस्था में कभी पूरे तौर पर मिलाया नहीं गया। न ही उनके वकीलों ने दूसरे शासकों के साथ संबंध बनाए रखे। स्थानीय सरदारों ने हैदराबाद दरबार की जीवन शैली को भी नहीं अपनाया और दरबार की राजनीतिक के दायरे से बाहर रहने में ही संतुष्ट रहे। लेकिन जब हैदराबाद दरबार कमजोर हो गया उस समय वे अपनी व्यक्तिगत क्षमता में निर्णायक कारक बने रहे।

2.10 वित्तीय और सैन्य समूह

साहूकारों, महाजनों और सेनापतियों (आमतौर पर भाड़े के) ने हैदराबाद की राजनीतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे प्रमुख भूमिका निभाते थे क्योंकि वे आवश्यक वित्तीय और सैन्य सेवा प्रदान करते थे। उनकी शक्ति का स्रोत उनका सम्प्रदाय था और वकीलों के विपरीत वे जाति अथवा सम्प्रदाय के समूहों की तरह काम करते थे। वित्तीय समूहों में कुछ मुख्य सम्प्रदाय या जाति समूह अग्रवाल और मारवाड़ी थे, जबकि अफगान और अरब प्रमुख सैनिक समूह थे। समर्थन और सेवाएँ वापस लेने की धमकी देकर ये व्यक्ति और समूह अपने स्तर पर राज्यतंत्र के संतुलन में एक अहम् भूमिका निभाने की स्थिति में थे।

2.11 प्रशासनिक प्रणाली

प्रशासनिक प्रणाली हैदराबाद राज्यतंत्र के दूसरे पहलुओं की प्रवृत्ति का अनुसरण करती दिखती है। पहले की मुगल संस्थाएँ प्रकट में व्यक्तियों को लाभ कमाने की छूट देने की प्रक्रिया में लगी रहीं, लेकिन अब उन्होंने निहित स्वार्थों को मज़बूत करने की भी छूट दे दी। सबसे अच्छा उदाहरण, दीवान के पद का है जो राज्य के अधिकतर रोज़मर्रा के मामलों को चलाता था। यहाँ दीवान की जगह दफ़्तरदार का मातहत पुश्तैनी पद कहीं अधिक अहम् हो गया। राजस्व जैसे मामलों को चलाने के लिए वेतनभोगी अधिकारियों के न होने की स्थिति में, ये दीवान स्थानीय देशपांडे या तालुकदार के द्वारा रकम निश्चित करके और

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 26 24-03-2021 11:47:18

उसे खाते में दर्ज करके, सही नियंत्रण कर पाने में समर्थ थे। इस तरह से उन्हें काफी दौलत बना लेने का मौका भी मिल जाता था।

बोध प्रश्न-2

सही उत्तर पर निशान लगाएँ।

1) हैदराबाद में इकट्ठा होने वाले राजस्व की रकम–
   - क) का फैसला दीवान करता था।
   - ख) का फैसला निजाम करता था।
   - ग) का फैसला देशपांडे या स्थानीय बिचौलियों की सहमति से दफ्तरदार करते थे।

2) हैदराबाद के वकील–
   - क) प्रमुख व्यापारी थे।
   - ख) प्रमुख सैनिक थे।
   - ग) प्रमुख कलाकार थे।
   - घ) बुनियादी तौर पर ताकत और प्रभाव के विभिन्न केन्द्रों के बीच के दलाल थे।

3) हैदराबाद के निज़ाम का शासन 1724 के बाद–
   - क) पूरे तौर पर मुगलों के अधीन था।
   - ख) केवल नाम के लिए मुगलों के अधीन था।
   - ग) पूरे तौर पर फ्रांसीसियों के अधीन था।
   - घ) पूरे तौर पर पुर्तगालियों के अधीन था।

4) हैदराबाद में स्थानीय सरदार–
   - क) पूरी तरह से निज़ाम के अधीन थे।
   - ख) अपनी-अपनी जगह शासक रहे।
   - ग) कभी रहे ही नहीं।
   - घ) ख) और ग) दोनों।

2.12 सिख धर्म : धार्मिकता से राजनैतिक पहचान तक

पंद्रहवीं तथा सोलहवीं सदियों में धार्मिक आंदोलनों की श्रृंखलाओं ने भारतीय धार्मिक विश्वासों को पुनः जागृत किया। इन्हीं आंदोलनों के गर्भ से पंजाब में सिख धर्म का उदय हुआ। इस नए उदित होते संप्रदाय के संस्थापक गुरु नानक थे, जिन्होंने अपने अनुयायियों को सिख नाम दिया जिसका साहित्यिक अर्थ है, सिखने वाला या अनुशासित। कुछ ही समय में इस नए धर्म का प्रसार होने लगा, लोगों के लिए सिख नाम एक व्यापक अर्थ वाला हो गया, किसी जाति का प्रतीक न होकर एक धर्म बन गया। गुरु नानक का धार्मिक आंदोलन शांतिपूर्वक, व्यापक था और इसका लक्ष्य धर्म निरपेक्ष जीवन के साथ एकता स्थापित करना था।

गुरु नानक के बाद अन्य नौ गुरु हुए जिन्होंने 200 वर्षों में न केवल सिख धर्म को संगठित तथा शक्तिशाली किया बल्कि मुगल सम्राटों तथा उनके सूबेदारों की चुनौतियों का सामना करने के लिए शक्तिशाली लड़ाकू ताकत बना दिया। इन गुरुओं के सिख धर्म के विकास में योगदान इस प्रकार थे :

- गुरु आनन्द ने गुरुमुखी लिपि को विकसित किया,
- गुरु रामदास ने अमृतसर के मंदिर की आधारशिला रखी,

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 27 24-03-2021 11:47:18

- गुरु अर्जुन देव ने आदि ग्रंथि को संकलित किया,
- गुरु हरि गोविन्द ने सिखों को सैन्य कला एवं युद्ध नीतियों में प्रशिक्षित किया,
- गुरु गोविन्द सिख ने सिखों को खालसा संगठनात्मक केन्द्र बिन्दु के साथ एक भलीभाँति संगठित लड़ाकू ताकत के रूप में संगठित किया।

गुरु गोविन्द सिंह की मृत्यु के साथ गुरुओं की परंपरा का अंत हो गया और सिख धर्म का नेतृत्व उनके विश्वसनीय शिष्य बंदा बैरागी के हाथों में चला गया जिसकी लोकप्रियता बंदा बहादुर के नाम से हुई। बंदा बहादुर ने मुगल सेनाओं के विरुद्ध 8 वर्षों तक प्रबल संघर्ष किया। 1715 में उसको गिरफ़्तार कर फांसी दे दी गई। बंदा की फांसी के बाद लगभग 10 वर्षों तक मुगल अधिकारियों ने सिख विद्रोहियों पर नियंत्रण करने के लिए अथक प्रयास किए। परन्तु उनका यह प्रयास सफल न हुआ। ऐसे बहुत से कारण थे जिनकी सहायता से सिखों ने स्वयं को पंजाब में सबसे शक्तिशाली राजनैतिक ताकत के रूप से संगठित एवं स्थापित किया। ये कारण निम्नलिखित थे :

- अठारहवीं सदी के प्रारंभिक दशकों से मुगल शाही प्रभुत्व का कमजोर पड़ना,
- नदिरशाह और अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण,
- मराठा आक्रमण,
- प्रांतीय प्रशासन में एकरूपता तथा एक सूत्र संपर्क का अभाव, और
- शाही सत्ता के प्रभुत्व की बहुत से स्थानीय सरदारों तथा जमींदारों के द्वारा अवमानना।

अठारहवीं सदी पंजाब में इन सभी कारणों से बड़ी अराजक स्थिति पैदा हो गई और इस स्थिति से सिखों का सबसे शक्तिशाली ताकत के रूप में उदय हुआ। अहमद शाह अब्दाली की मौत उत्तर भारत में अफगान साम्राज्य के आधिपत्य की मृत्युघण्टी साबित हुई। अफगान शक्ति के पतन के साथ ही सिख मसलों ने पंजाब में प्रमुख भूमिका प्राप्त कर ली और क्रमशः इनके सरदारों ने स्वतंत्र रियासतों को बनाने में सफलता प्राप्त की।

सिखों ने मुगल अधिकारियों के दमन का सामना करने के लिए स्वयं को बहुत से छोटे तथा अत्यंत गतिशील गुटों में संगठित किया। इन गुटों को जत्थे तथा इनके कमाण्डरों को जत्थेदार कहा जाता था। एकताबद्ध कार्यवाही की आवश्यकता को महसूस करते हुए जत्थेदारों ने एक संघ बनाने की कोशिश की और इसके लिए वे बैसाखी तथा दिवाली के त्योहारों के अवसरों पर एक समूह के रूप में मिलते थे। यद्यपि इन बैठकों को स्थायी तौर पर आयोजित न किया जा सका परन्तु इससे विभिन्न गुटों के बीच एकता को बढ़ावा मिला।

अफगानों के द्वारा मुगलों तथा मराठों की पराजय से लाभ उठाते हुए सिखों ने पंजाब में अपने आधार को और सुदृढ़ किया। 1765 के बाद से सिखों का राजनैतिक शक्ति के रूप में तेजी से विकास हुआ और जिसकी अंतिम परणिति उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में स्वतंत्र राज्य की स्थापना के रूप में हुई। अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में बहुत छोटे गुटों ने स्वयं को 12 क्षेत्रीय संघों या मिसलों में स्थानीय सरदारों के नेतृत्व में पुनः संगठित किया। इस प्रकार :

- भागी मिसल का नियंत्रण झेलम तथा सिंधु नदियों के बीच के क्षेत्रों लाहौर एवं अमृतसर पर था,
- रामगढ़ी मिसल का नियंत्रण जालंधर के दोआब पर था,
- कन्हैया का नियंत्रण रैकरी क्षेत्र पर,
- सिंहपुरियों का नियंत्रण सतलुज नदी के पूर्वी तथा पश्चिमी इलाकों पर,
- अहलूवालिया मिसल का नियंत्रण राजकोट तथा कपूरथला पर,
- सुकर चकिया का आधिपत्य गुजरनवाला, वजीराबाद पर, तथा
- फुलकिया का नियंत्रण मालवा तथा सिरहिन्द पर था।

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 28 24-03-2021 11:47:18

ये मिसलें अपने मूल रूप से समानता के सिद्धांत पर आधारित थी। मिसलों के मामलों के बारे में निर्णय करते समय प्रत्येक सदस्य को समान रूप से बोलने का अधिकार था और अपने-अपने संगठन के मुखिया तथा अन्य अधिकारियों को चुनने का भी अधिकार था। मिसल के प्रारंभिक चरण में उसकी एकता तथा लोकतांत्रिक चरित्र अफगान आक्रमण के खतरे के टल जाने के बाद धीरे-धीरे समाप्त हो गया। समय के इस घटना-चक्र में शक्तिशाली सरदारों के उदय तथा उनके आंतरिक कलह और उनकी विनाशकारी लड़ाइयों के कारण मिसलों का लोकतांत्रिक चरित्र भी समाप्त हो गया। इस आंतरिक संघर्ष ने मिसलों की जड़ ही खोद दी। अन्ततः सुकर चकिया मिसल के सरदार रणजीत सिंह का दूसरी मिसलों के सरदारों के बीच एक शक्तिशाली ताकत के रूप में उदय हुआ और उसने हथियारों की शक्ति के बल पर सिखों के बीच एकता स्थापित की।

2.13 सिख राज्य का उदय

पंजाब के राजनैतिक घटनाचक्र में नया मोड़ रणजीत सिंह के उदय के साथ आया। जिस प्रक्रिया का प्रारंभ अठारहवीं सदी में सिख क्षेत्रीय संगठन की स्थापना के साथ हुआ था उसकी चरम पराकाष्ठा उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में पंजाब में रणजीत सिंह द्वारा स्थापित स्वायत्त राज्य की स्थापना के रूप में हुई। रणजीत सिंह सुकर चकिया मिसल के सरदार महान सिंह का पुत्र था। 1792 में जिस समय उसके पिता की मृत्यु हुई, उस समय वह केवल 12 वर्ष का था। उसे उत्तराधिकार में जो राज्य मिला था उसके अंतर्गत गुजरनवाला, वजीराबाद और सियालकोट रोहतास तथा पिण्डदन्दान खाँ के क्षेत्र आते थे। यह वह समय था जबकि सिख मिसलों का आपसी संघर्ष सर्वोच्चता के लिए चल रहा था। सिख सरदारों के आपसी संघर्षों और जमन शाह के नेतृत्व में 1795, 96 तथा 98 में अफगान आक्रमणों ने रणजीत सिंह की अपनी ताकत को पंजाब में सुदृढ़ करने में मदद की। रणजीत सिंह ने सफलतापूर्वक सिख मिसलों की स्वतंत्रता को समाप्त कर दिया और उनको एकमात्र राजनीतिक आधिपत्य के अधीन कर लिया।

प्रारंभिक कुछ वर्षों में रणजीत सिंह के सम्मुख समस्या अपने दीवान लखपत राय की बढ़ती शक्ति और उसकी माता माई मलवाई द्वारा, प्रशासन पर नियंत्रण करने के प्रयासों को रोकना था। उसने अपने दीवान से छुटकारा पाने के लिए उसको कैथल के एक खतरनाक अभियान पर भेज दिया और जहाँ पर उसको मार दिया गया। भाई मलकाई की हत्या भी संदेहास्पद ढंग से कर दी गई। अपने घरेलू राज्य के मामलों पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित करने के बाद रणजीत सिंह ने मिसलों के सरदारों के विरुद्ध अभियान चलाया। कन्हैया मिसल सरदार तथा उसकी सास रानी सदा कौर के सक्रिय सहयोग से उसने रामगढ़ी मिसल पर आक्रमण किया। कन्हैया मिसल के क्षेत्र पर अधिकार कर लेने के कारण रामगढ़ी मिसल को सजा देने के लिए इस अभियान को चलाया गया था। रामगढ़ी मिसल को पराजित कर उसके मुख्य नगर मियानी पर अधिकार कर लिया गया।

शक्तिशाली रामगढ़ी मिसल के अपमानजनक समर्पण के बाद रणजीत सिंह ने अपना ध्यान लाहौर पर केन्द्रित किया। 1747 में अफगान नेता जमान शाह ने लाहौर पर अपना नियंत्रण कायम कर लिया। परन्तु ईरान के शाह के साथ मिलकर उसके भाई द्वारा उसके विरुद्ध षड़यंत्र करने के कारण जमान शाह को वापस लौटने के लिए मज़बूर होना पड़ा। उसने लाहौर को अपने सूबेदार शाहंची खाँ के अधीन कर दिया। ज़मान शाह के वापस लौट जाने के कारण रणजीत सिंह को लाहौर पर अधिकार करने के लिए सुअवसर मिल गया। गुजरात के साहिब सिंह तथा पिण्डीवाला के मिलखा सिंह के गठबंधन के साथ उसने शाहंची खाँ पर आक्रमण किया और 1799 में लाहौर पर अधिकार कर लिया। लाहौर के बाद उसने भांजी मिसल पर आक्रमण कर किसी कड़े विरोध के बिना अमृतसर तथा उनके अन्य क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। लाहौर और अमृतसर का स्वामी होने के बाद रणजीत सिंह ने स्वयं को इसका सर्वमान्य राजा घोषित करते हुए पंजाब में संप्रभु संपन्न सिख राजतंत्र की नींव रखी। अपनी स्थिति को और सुदृढ़ करने के लिए रणजीत सिंह ने अन्य राज्यों की ओर अपने अभियान को जारी रखा। उसने जम्मू को अधीन कर लिया,

मिरोवाल, नरोवाल, सियालकोट, दिलावरगढ़, वजीराबाद पर भी अधिकार कर लिया और उसने काँगड़ा के राजा संसार चंद तथा कासूर के पठान सरदार निजामुद्दीन के अभिमान को तोड़ दिया। काबुल की मुसलमान रियासतें जैसे कि झंग तथा साहीवाल समर्पण करने को तैयार थी और मुलतान के गवर्नर मुजफ्फर खाँ ने रणजीत सिंह को ढेर सारे उपहारों के साथ बधाई दी। परन्तु मुल्तान ने अन्ततः 1818 में मीर दीवान चन्द के नेतृत्व में सिख सेनाओं के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया। कश्मीर 1819 तक जीत लिया गया और 1820 में रणजीत सिंह को संपूर्ण पंजाब का शासक मान लिया गया जिसके अंतर्गत सिंधु से सतलुज तक का क्षेत्र, कश्मीर और तिब्बत की सीमा तक पर्वतीय क्षेत्र आता था। सिंधु नदी के पार के डेरा इस्माइल, डेरा गाजी खान, खैराबाद और अंततः पेशावर (1834) सभी को सिख शासन के अधीन कर लिया गया। रणजीत सिंह के अधिकारियों ने रणजीत सिंह द्वारा स्थापित राज्य की क्षेत्रीय अखण्डता को 1845 तक बनाए रखा तथा कुछ नए छोटे क्षेत्रों को भी उसमें शामिल कर लिया। परन्तु विभिन्न चरणों में सिख राज्य ब्रिटिश साम्राज्यवादी व्यवस्था के अधीन हो गया और 1849 में अंतिम रूप से इसको पूर्णतः ब्रिटिश साम्राज्य में लिया गया।

2.14 सिख राजनीतिक व्यवस्था का चरित्र

अभी तक हमने सिख राज्य तथा उसके संगठनात्मक ढाँचे के विकास के विषय में विवेचन किया है। लेकिन सिख राजनीतिक व्यवस्था का क्या चरित्र था? इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि सिख राजनीति को मूलभूत आधार सिख गुरुओं के उपदेशों ने उपलब्ध कराया। मध्य काल में सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक अन्यायों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए सिखों के बीच जो आंदोलन पैदा हुआ वह अठारहवीं सदी के दौरान अंततः एक राजनैतिक आंदोलन में परिवर्तित हो गया। इसलिए सिख राजनीति की आधारशिला नैतिक नियमों और गुरुओं की लोकतांत्रिक परंपराओं के आधार पर रखी गयी। इस लोकतांत्रिक परंपरा की अभिव्यक्ति मिसल काल की सिख राजनीतिक व्यवस्था में गुरमत, दल खालसा, खालसा के नाम पर शासन करने आदि जैसी बहुत सी विशेषताओं में पायी जाती है।

यह जानना महत्वपूर्ण है कि मिसल काल के दौरान की सिख राज्य व्यवस्था के चरित्र के विषय में सभी इतिहासकार एक मत नहीं हैं। कुछ इतिहासकारों के अनुसार मिसलें अपने चरित्र में धार्मिक, राजनैतिक व्यवस्था वाली थी परन्तु दूसरी ओर यह भी मत व्यक्त किया गया है कि मिसल के सरदारों के कार्य करने से स्पष्ट है कि अपने-अपने क्षेत्रों में स्वतंत्रतापूर्वक कभी-कभी अपने हितों के अनुरूप कार्य करते थे। सरबत खालसा की सभाओं में उनकी उपस्थिति आवश्यक नहीं थी। वे इन सभाओं में आपात स्थिति पर विचार-विमर्श करने के लिए ही शामिल होते थे या पारस्परिक हितों के मामलों के लिए। इन सभाओं के निर्णयों को मानना उनके लिए अनिवार्य नहीं था। परन्तु लोकतांत्रिक परंपराओं का एक ढाँचा होने के बावजूद भी मिसलों के आंतरिक संगठन में बहुत अधिक लोकतंत्र नहीं था। व्यक्ति विशेष की सरकार के सिद्धांत का प्रचलन ही अधिक था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि मिसलों का एक संघ था परन्तु एक मिसल के अंतर्गत सरदार या मिसल का मुखिया पूर्ण रूप से स्वतंत्र होता था। बाह्य खतरों के कारण मिसलों के संघ का अस्तित्व था। आंतरिक मामलों में संघ का मिसलों पर कोई नियंत्रण न था।

बहुत से स्वतंत्र सरदारों के स्थान पर सिख राजतंत्र के उदय के कारण सिख राजनीति के चरित्र में पुनः और परिवर्तन हुआ। उन्नीसवीं सदी में सरदार की व्यक्तिगत स्वायत्तता का अंत हो गया और राज्य के अंतर्गत राजा सर्वोच्च प्रभुत्वसंपन्न बन गया। रणजीत सिंह का सिख धर्म का पुस्तकों तथा सिख धर्म में पूरा-पूरा विश्वास था। परन्तु उसने अपने व्यक्तिगत विश्वास (धर्म) का प्रशासन चलाने में कभी भी प्रयोग नहीं किया। पंजाब को विभिन्न जातियों, धार्मिक और भाषाई गुटों के लोगों की भूमि होने के कारण एक धर्म निरपेक्ष प्रशासन की आवश्यकता थी और सिख शासकों ने इस क्षेत्र में अपने शासन को सुदृढ़ करने के लिए उचित ढंग से कार्य किया। प्रशासन के मामलों में धर्म का हस्तक्षेप बिल्कुल भी नहीं किया गया। डॉ. इन्दू बंगा ने लिखा है कि पहाड़ी घाटियों तथा इसी

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 30 24-03-2021 11:47:18

प्रकार के अन्य मैदान वाले स्थानों पर स्वायत्त रियासतों की निरंतता, जागीरों का आवंटन तथा बिना किसी मदभेद के जमींदार कुलीनों की सेवा, धरमारथ के लिए धार्मिक व्यक्तियों और विभिन्न धर्मों से संबंधित धार्मिक संस्थाओं को दिए जाने वाले अनुदान, इन सबके पीछे मुख्य उद्देश्य सुदृढ़ता की आवश्यकता थी।

बोध प्रश्न-3

1) सिखों के भाईचारे को गुरुनानक से गुरु गोविन्द तक किस प्रकार सुदृढ़ किया गया?

....

....

....

2) मिसलों का उदय कैसे हुआ? सिख राज्य-व्यवस्था में उनकी भूमिका क्या थी? उत्तर दीजिए।

....

....

....

3) सिख राज्य के स्वरूप पर चर्चा कीजिए।

....

....

....

2.15 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि मैसूर के राज्यतंत्र में किस तरह उन संस्थाओं में जो कमजोर ढंग से स्थापित हुई थीं या कमज़ोर हो रही थीं तमाम बिचौलिए तथा अन्य व्यक्ति राज्यतंत्र के विभिन्न स्तरों पर निर्णायक भूमिका निभा रहे थे। इस प्रक्रिया में मैसूर एक ऐसे राज्य के रूप में उभरा जो कुछ अर्थों में हैदर और टीपू की सैनिक शक्ति के जरिए एक मज़बूत प्रशासन कायम करके उनके संस्थात्मक आधार की कमजोरियों को दूर करने में कामयाब रहा। इससे कुछ हद तक कुछ व्यक्तियों और ताकतों पर पाबंदी तो लग गई लेकिन वे खत्म बिल्कुल नहीं हुई। दूसरी ओर, हैदराबाद में प्रशासन के अंदर स्वार्थी तत्वों को मज़बूत हो जाने दिया और ऊपर से नीचे तक 'संरक्षण-आश्रितों' के सम्पर्कों से अपने राजतंत्र को कायम किया।

लगातार होने वाले विदेशी आक्रमणों और सिख सरदारों के विद्रोहों के कारण पंजाब में मुगल प्रशासन समाप्त हो गया था। इन व्याप्त अस्थिर राजनैतिक परिस्थितियों में सिखों का उदय एक राजनैतिक ताकत के रूप में हुआ और उन्होंने पंजाब में एक स्वायत्त राज्य की स्थापना की। रणजीत सिंह के नेतृत्व तथा उसकी राजनैतिक कुशलता ने इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान दिया। मुगल व्यवस्था की तुलना में प्रशासन में बहुत अधिक संस्थापक परिवर्तन नहीं हुए और अपने शासन को सुदृढ़ करने के लिए सिख शासकों ने प्रशासन में धर्म निरपेक्ष दृष्टिकोण को अपनाया।

2.16 शब्दावली

विभाग निवेश : इस इकाई में विभाग निवेश व्यापारी पूँजीपतियों के द्वारा किए निवेश की विविधता को जताता है।

राजस्व किसान : ऐसे व्यक्ति जिन्हें कोई शासक राज्य की माँग के अनुसार एक निर्धारित राजस्व के बदले में खेती योग्य भूमि देता है।

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 31 24-03-2021 11:47:18

सरंक्षक : ऐसा व्यक्ति जो अपनी हैसियत या असर के कारण किसी का कुछ भला कर सकता है। आश्रित वह है, जिसका यदि भला किया जाता है और जो संरक्षक की कुछ सेवा करता है।

कुतबा : सम्राट के लिए प्रार्थना।

अबवाब : भू-राजस्व के साथ-साथ अन्य कर (उत्पादक कर, चुंगी) भी किसानों से वसूल किए जाते थे।

आदि ग्रंथ : सिख पंथ की धार्मिक पुस्तक।

दल खालसा : एक से अधिक सरदार की संयुक्त सेनाएँ जिनका गठन किसी विशेष उद्देश्य के लिए किया गया हो परन्तु अस्थायी तौर पर।

धरमारथ : भूमि अनुदान जिसे धार्मिक तथा स्वयंसेवी संस्थाओं को दिया गया हो।

फौजदार : मुगलों के अंतर्गत एक सरकार का प्रशासनिक अधिकारी।

गुरमत : गुरु ग्रंथ साहिब के सम्मुख सरबत खालसा में उपस्थित सिखों द्वारा पूर्ण बहुमत से पारित प्रस्ताव।

पटवारी : गाँव का मुनीम।

सरबत खालसा : संपूर्ण खालसा, सिख पंथ की सभा।

2.17 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) क), 2) घ), 3) ख), 4) क)

बोध प्रश्न-2

1) ग), 2) घ), 3) ख), 4) ख)

बोध प्रश्न-3

1. भाग 2.12 देखें।
2. भाग 2.12 देखें।
3. भाग 2.14 देखें।

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 32 24-03-2021 11:47:18